राजस्थान में मीनाकारी कला : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

– डॉ. महेन्द्र चौधरी
व्याख्याता (इतिहास),
सेठ आर.एल. सहरिया राजकीय महाविद्यालय, कालाडेरा
(जयपुर)

सारांश : राजस्थान की मीनाकारी ने विश्व मानचित्र पर अपनी उल्लेखनीय पहचान बनाई है। विश्व विख्यात मीनाकारी का प्रारम्भ मुगलकाल से हुआ। मुगलों के समय आमेर में और जयपुर की स्थापना के पश्चात् यह हस्तकला जयपुर की पहचान बन गई। इसका विकास नए नगर के विकास के साथ ही होता चला गया। राजस्थान अनेकों शताब्दियों से आभूषण निर्माण में सिरमौर रहा। रंगीन पत्थरों व हीरे की कटाई यहाँ का प्रमुख शिल्प व व्यवसाय है। सोने चाँदी के कलात्मक आभूषण बनाने के लिए जयपुर, जोधपुर, अजमेर व उदयपुर के स्वर्णकार विश्व प्रसिद्ध हैं। बीकानेर, जयपुर, नाथद्वारा तथा प्रतापगढ़ आदि में मीनाकारी का कार्य बहुत सुन्दर व मनमोहक होता है। यह काम मीनाकार या सुनार भी करते है। मीनाकारी मध्ययुगीन हस्तकला हैं जो फारस तथा लाहौर होती हुई जयपुर आई। मीनाकारी की अनेक किस्में प्रचलित है। जयपुरी मीनाकारी तो अपनी एक खास पहचान रखता है।

संकेताक्षर : मीनकारी, राजस्थान के हस्तशिल्प, हस्तकला।

प्रस्तावना

मीना फारसी के शब्द मीनू से लिया गया हैं, जिसका अर्थ है स्वर्ग। ईरान के कारीगरों ने इस कला का आविष्कार किया जो बाद में मंगोलों द्वारा भारत व अन्य देशों में फैल गई। भारत का जयपुर मीनाकारी की कला के लिए दुनियाभर में प्रसिद्ध है। जयपुर में मीनाकारी की कला महाराजा मानसिंह प्रथम द्वारा लाहौर से लाई गई थी। जयपुर में मीनाकारी का कार्य सोने, चांदी व पीतल के आभूषणों के अलावा मार्बल से बनने वाले इंटीरियर सजावटी सामान व खिलौनों पर भी किया जाता है। जयपुर के अलावा राजसमंद जिले का नाथद्वारा भी मीनाकारी के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यहाँ पर भी सोने के आभूषणों और खिलौनों पर बड़ी सुंदर मीनाकारी की जाती है। मीनाकारी में मुख्य रूप से फूल पत्तियां, पक्षियों और जानवरों के पैटर्न को शामिल कर आर्टवर्क किया जाता है, जिसके लिए काले, नीले, हरे, गहरे पीले, लाल, नारंगी और गुलाबी रंग का इस्तेमाल किया जाता है। लाल रंग बनाने में जयपुर के मीनाकार कुशल है। मीना, शीशे जैसे पत्थर के रूप में आता है, जिसे पीसकर बारीक पाऊडर बनाया जाता है। इस पाऊडर में पानी, तेल और गोंद मिलाकर एक गाढ़ा घोल तैयार किया जाता है।उत्कीरित डिजाइन में इस घोल से नक्काशी की जाती है। इसके बाद वस्तु को अत्याधिक तापमान पर गर्म किया जाता है, जिससे मीना वस्तु पर चिपक जाता है।

सोने–चांदी व अन्य आभूषणों एवं कलात्मक वस्तुओं पर मीना चढ़ाने की कला मीनाकारी कहलाती है मीना के रंगो की चमक सामान्य रंगो से कही अधिक तीव्र होती है। इस विधि से अलंकारिक कार्य एवं चित्र भी बनाये जाते है जो एनैमल चित्रकारी के नाम से प्रसिद्ध है। मीना की कला का जन्म एशिया में हुआ।

मीना का काम सर्वप्रथम फाइनीशिया में किया जाता था तदन्तर चौसरों के राजस्व काल में यह कारीगरी फारस में लाई गई। उसके पश्चात मुगलो द्वारा यह कारीगरी लाहौर में लाई गयी लाहौर में यह काम सिक्खों द्वारा किया जाता था। अतः मीना की यह कारीगरी भारत में विदेश से आई और राजस्थान के राजाओं ने सबसे पहले उसको प्रोत्साहित किया। राजस्थान में युद्धो की अस्थिरता के कारण प्राचीन समय में मुद्रा रखने के अतिरिक्त स्थाई निर्वाह के लिए स्वर्ण संचय करना अधिक सुरक्षापूर्ण और उपयोगी समझा जाता था तथा आभूषणों को मीनाकारी से अलंकृत किया जाता था।[1] मीनाकारी जयपुर के महाराजा मानसिंह प्रथम (1589–1614) लाहौर से अपने साथ लाये।[2]

मीनाकारी के काम में स्वर्ण का भी इस्तेमाल पारंपरिक तौर पर किया जाता है क्योंकि इसकी तामचीनी यानि मदंउमस ूवता पर अच्छी पकड़ होती है और इससे मदंउमस की चमक उभर कर आती है। कुछ समय के बाद चांदी का भी प्रयोग किया जाने लगा जो डब्बे, चम्मच और दूसरी कलात्मक वस्तुएं बनाने के काम में आने लगा। इन सबके बाद जब स्वर्ण पर रोक लगने लगी तो ताम्बे का प्रयोग किया जाने लगा। इतिहास के हिसाब से मीनाकार सुनार जाति से सम्बंधित हैं और इन्होंने मीनाकार या वर्मा नाम से पहचान बनाई। मीनाकारी का कार्य वंश के हिसाब से चलता रहता है और ऐसा बहुत कम होता है कि मीनाकार लोग अपने हुनर की जानकारी किसी और को दें। मीनाकारी की वस्तुएं बनाने का क्रम बहुत लम्बा और गहन होता है और इसे कई कुशल हाथों से गुजरना होता है। मीनाकारी सिर्फ गहने तक सीमित नहीं है, इससे कई सजावट की वस्तुएं भी बनाई जाती हैं। ज्वैलरी पर मीनाकारी के लिए जयपुर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट पहचान रखता है। जयपुर में मीनाकारी की कला महाराजा मानसिंह प्रथम (1589–1614 ई.) द्वारा लाहौर से लाई गई। परम्परागत रूप से सोने पर मीनाकारी के लिए काले, नीले, गहरे, पीले, नारंगी और गुलाबी रंग का प्रयोग किया जाता है। लाल रंग बनाने में जयपुर के मीनाकार कुशल है। मीनाकारी का कार्य मूल्यवान, अर्द्धमूल्यवान रत्नों तथा सोने–चांदी के आभूषणों पर किया जाता है। मीनाकारी में फूल–पत्ती, मोर आदि का अंकन प्रायः किया जाता है। सोने के आभूषणों के अतिरिक्त चाँदी के खिलौनों व आभूषणों पर भी मीनाकारी की जाती है। नाथद्वारा भी मीनाकारी का प्रसिद्ध केन्द्र है। प्रतापगढ़ एवं कोटा के रेतवाली क्षेत्र में कांच पर विभिन्न रंगों से मीनाकारी का काम किया जाता है। अतः जिस प्रकार मीनाकारी के नाम से ही प्रतीत होता है 'मीन' अर्थात् मछली, जैसा की मछली की आंखों में अद्भुत रंगों की चमक दिखाई देती है उसी प्रकार मीनाकारी कला में भी मछली की आंख के समान क्रिस्टलीय प्रभाव दिखाई देता है।

मीनाकारी का इतिहास

आभूषणों के विशेष प्रकारों में से एक मीनाकारी हस्तशिल्प का विशेष प्रसार यूरोप, चीन एवं भारत में विभिन्न स्थानों तक है। हालांकि इसकी लोकप्रियता वैश्विक एवं दीर्घकालीन रही है। इन स्थानों पर मीनाकारी अपनी पूर्ण विशिष्टता के साथ की जाती रही है। प्राचीनता की दृष्टि से सजावट में रंगीन काँच का प्रयोग संभवतः आरंभिक समय से होता रहा है। मीनाकारी के प्राचीन उदाहरणों में हरे एवं नीले रंग की आकृतियाँ पाई गई है जिनका उपयोग मिस्त्र की मीनारों में किया गया।[3] सेल्ट्स तथा गोथस भी मीनाकारी कला से भलीभांति परिचित थें जिसे इन्होंने संभवतः बाइजेंटाइन वासियों से सीखा होगा। अलंकरण के लिए प्राथमिक एवं व्यापक रूप से मीनाकारी का प्रयोग उत्तर ग्रीसवासियों ने किया जो कि कुस्तुनतुनिया के

आस–पास रहते थें, जब वह नग़र बाइजेंटाइन के अन्तर्गत आता था एवं जो कि कालान्तर में पश्चिमी रोमन साम्राज्य की राजधानी बन गया था।[4] बाइजेंटाइन मीनाकारी एक वैज्ञानिक तकनीक के तौर पर कोलोजिन के नाम से जानी गई। अतः स्पष्ट है कि मीनाकारी कला अति प्राचीन है एवं यूरोप के देशों से अज्ञात नहीं थी।[5] यूरोपीय देशों में 6वीं एवं 7वीं सदी के दौरान मीनाकारी अत्यंत आकर्षक रूप में की जाती थी तथा 11वीं सदी में यूरोपीय कलाकारों ने चम्पलेवी पद्धति का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था।[6] 12वीं तथा 13वीं सदी में यह पद्धति काफी लोकप्रिय हुई। यूरोप में मीनाकारी कला का प्रसार क्षेत्र इंग्लैण्ड, ऑस्ट्रिया, फ्रांस, आयरलैण्ड, इटली, इत्यादि राष्ट्र रहें। यूरोपीय मीनाकार अधिकांशत्ः धातुयी माध्यम अर्थात् रजत और ताम्र पर मीनाकारी का कार्य करते थे तथा कलात्मक वस्तुओं को निर्मित करते थे।[7]

चित्र : क्लोइजोन तकनीक से बना बेंजेंटाइन मीनाकारी पट्टिका

मीनाकारी का कार्य सर्वप्रथम फाइनीशिया, प्राचीन यूनान, रूस, मिश्र, रोमन साम्राज्य, चीन व फारस से लाहौर होते हुए भारत में पहुँचा। प्राचीन मिश्र के लोग मिट्टी के बर्तनों व रत्नों पर इनेमल लगाते थे। 13वीं शताब्दी में कांच पर रंगीन मीना का कार्य जोरों पर था जिसमें कांच को डिजाईन में उकेर कर उसमें नीले व अन्य रंगों से बेलबूटों का कार्य किया जाता था। प्राचीन यूनानी, सेल्टस रूसी व चीनी इनेमल का उपयोग धातु की वस्तुओं को सजाने के लिए करते थे। रोमन काल के दौरान मीना का कार्य कांच के बर्तनों की सजावट में होता था। बेंजेंटाइन व गोधिक काल में मीनाकारी की तीन पद्धतियां लिमोजस, चम्पलेवी व कलोजिन काफी प्रसिद्ध हुई। लिमोजस तकनीक में पेंटिंग की भांति रंग भरे जाते थे। बाइजेनटाइन व गोथिक में चित्रों के विषय नर पशु, अजीबो गरीब पशु थोमस बैक्केट का वध, थ्री मेगी (तीन महापुरूष) आदि थे। इस समय नीले रंग का प्रयोग मुख्यतया किया जाता था व लाल, हरे, काले व सुनहरी रंग भी विशेष प्रचलन में थे। यूरोप में प्रचलित मीनाकारी के आरम्भिक उदाहरणों में प्रमुख विशेषता कलाकृति के चित्र है जो मुख्यतया यूरोप में ही विशेष रूप से प्रचलित थे। चूंकि गोथिक शैली (चर्च के अधिन पल्लिवित शैली) है तो वहाँ के विषय भी ज्यादातर धर्म आधारित है।

राजस्थान में मीनाकारी परम्परा

राजस्थान की हस्तकलाओं का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि पाषाणयुगीन मानव का इतिहास[8] अतः सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव ने अपने उपयोग के लिए विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। हाथों की कला से निर्मित ऐसी वस्तुओं में कलात्मकता देखते ही बनती थी। प्राचीन काल से ही राजस्थानी हस्तशिल्प के उत्कृष्ट नमूने प्रदेश के लोगों की कलात्मक अभिरूचि को प्रदर्शित करते रहे है। यहाँ की हस्तकलाओं का इतिहास तभी से जाना जा सकता है जब से मनुष्य ने पत्थरों के औजार बनाना प्रारम्भ किये। राजस्थान की विभिन्न सभ्यताओं की खुदाई के अवशेषों में हस्तकला उत्पाद प्रायः सभी स्थानों पर मिले है। कालीबंगा की खुदाई से सिन्धु घाटी सभ्यता के जो अवशेष प्रदेश में मिले है, उनसे पता चलता है कि कभी राजस्थान हस्तकला उद्योगों का प्रमुख केन्द्र रहा है। कालीबंगा के उत्खनन कार्य से मिली वस्तुओं में मिट्टी के कलात्मक बर्तन मूर्तिया, पत्थर के औजार आदि विशेष रूप से प्राप्त हुए है। इनसे सहज ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि राजस्थान हस्तकलाओं के लिहाज से आरम्भ से ही खासा समृद्ध रहा है। 'हस्तशिल्प' इस शब्द के उच्चारण मात्र से यह भान हो जाता हैं कि यह शब्द उन शिल्प कलाओं को इंगित करता हैं, जिनके निर्माण में हाथ के कौशल की प्राथमिक भूमिका होती हैं।

राजस्थान अनेकों शताब्दियों से आभूषण निर्माण में सिरमौर रहा। रंगीन पत्थरों व हीरे की कटाई यहाँ का प्रमुख शिल्प व व्यवसाय है। सोने चाँदी के कलात्मक आभूषण बनाने के लिए जयपुर, जोधपुर, अजमेर व उदयपुर के स्वर्णकार विश्व प्रसिद्ध हैं। बीकानेर, जयपुर, नाथद्वारा तथा प्रतापगढ़ आदि में मीनाकारी का कार्य बहुत सुन्दर व मनमोहक होता है। यह काम मीनाकार या सुनार भी करते है। मीनाकारी मध्ययुगी हस्तकला हैं जो फारस तथा लाहौर होती हुई जयपुर आई। मीनाकारी की अनेक किस्में प्रचलित है। जयपुरी मीनाकारी तो अपनी एक खास पहचान रखता है। राजस्थान की हस्तकलाओं का इतिहास यहाँ की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा है परन्तु अंग्रेजो के समय में हस्तकलाओं का विकास समुचित रूप से इस लिए नहीं हो सका था कि उन्होनें हस्तकलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं दिया। यही नहीं स्वतन्त्रता के पश्चात बहुत से मुस्लिम हस्तकलाकारों द्वारा भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने के कारण हस्तकलाओं को खासी क्षति पहुँची। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात लघु उद्योग निगम, हैण्डीक्राफ्ट बोर्ड आदि की स्थापना के साथ ही समय–समय पर लगने वाले हस्तशिल्प उत्पाद मेलों से जरूर हस्तकलाओं प्रोत्साहन एवं उत्पाद की बाजार मिला। अतः व्यक्तिगत व्यापारिक साधनों द्वारा हस्तोद्योगों की वस्तुओं का भारी मात्रा में निर्यात होने लगा है विदेशी राजस्थान की कलाओं के अत्यन्त प्रशंसक है।[9]

मध्यकालीन भारत के अन्तर्गत राजपूताना के भिन्न स्थानों पर भी मीनाकारी की जाती थी। इनमें बीकानेर, उदयपुर तथा जयपुर प्रधान कला केन्द्र रहे। जयपुर मीनाकारी का सर्वोत्तम केन्द्र रहा है जो मुगल परम्परा को भी सुरक्षित बनाए हुए है। कुमारास्वामी ने अपने लेख श।द प्दकपंद म्दंउमसश में एक भारतीय स्वर्ण पेन्डेंट की चर्चा की है। जिसका अग्रभाग जड़ित था तथा पृष्ठ भाग मीनाकारी से युक्त था, इसे 16वीं सदी का माना गया जो संभवतः जयपुर के शाही संरक्षकों द्वारा सिख कलाकारों से निर्मित करवाया गया।[10] आभूषणों तथा मीनाकृत कलाकृति के इतिहास में 19वीं सदी तुलनात्मक रूप से अधिक प्रमुख है। 19वीं सदी

में मीनाकृत वस्तुएँ सामान्य लोगों के मध्य भी अत्यन्त लोकप्रिय बनी। शुद्ध स्वर्ण एवं रजत आभूषणों का प्रयोग इस काल में भी प्रचलित रहा परन्तु लोगों ने मीनाकृत आभूषण तथा रत्नजड़ित आभूषण, जो मूल्यवान रत्नों से जड़ित रहें, इन्हें इस काल में बेहद पसन्द किया।[11] पूर्व प्रचलित शुद्ध स्वर्णाभूषण का स्थान मीनाकृत आभूषणों ने ले लिया था। अतः 19वीं सदी के स्वर्ण, रजत, ताम्र सभी धातुयी आभूषणों के मध्य यह अत्यन्त लोकप्रिय थे। इस काल में मीनाकृत आभूषणों के अतिरिक्त भिन्न–भिन्न स्थानों पर विविध व्यक्तिगत उपयोगार्थ वस्तुओं पर भी मीनाकारी की जाती थी। 19वीं सदी में मीनाकारी का कलात्मक कार्य भारत में लखनऊ, हैदराबाद, कश्मीर, बनारस मुल्तान, दिल्ली, बीकानेर, जयपुर, इत्यादि में प्रमुखता के साथ होता था।

मध्यकाल में मीनाकारी

मध्यकालीन भारत के अन्तर्गत सल्तनत काल में मीनाकारी हस्तशिल्प का विकास नजर नहीं आता परन्तु इस काल में वास्तुशिल्प, संगीत कला विद्यमान नजर आती हैं। मुगल शासन के दौरान भारत में सांस्कृतिक गतिविधियों का बहुमुखी और उत्तम विकास हुआ। इस काल में स्थापत्य कला, चित्रकला, साहित्य संगीत और हस्तशिल्प के क्षेत्रों में जिन परम्पराओं की स्थापना हुई और उन्होंने जो मानदण्ड स्थापित किए उनका बाद की पीढ़ियों तक गहरा प्रभाव पड़ा। सतीश चन्द्रा के अनुसार इस अर्थ में उत्तर भारत में गुप्तकाल के बाद मुगल काल को दूसरा शास्त्रीय काल कहा जा सकता है।[12] विभिन्न क्षेत्रों में चौदहवी तथा पन्द्रहवी सदी में कला और संस्कृति के विकास क्रम ने एक समृद्ध और बहुपक्षीय परम्परा को जन्म दिया था। विभिन्न क्षेत्रों तथा विभिन्न धर्मो और नस्लों के लोगों ने इस सांस्कृतिक विकास में योगदान दिया। इस अर्थ में इस काल में विकसित संस्कृति का रूख समन्वित राष्ट्रीय संस्कृति की ओर भी रहा। मुगलकालीन भारत आर्थिक समृद्धता की एक मिसाल रहा जहाँ प्रत्येक क्षेत्र में समृद्धि दृष्टिगोचर होती है, यह काल कलाकारों, कारीगरों, शिल्पकारों के लिए महत्वपूर्ण रहा।[13] अतः मुगल राज्यों में आगरा, लाहौर, अहमदाबाद, वाराणसी, पटना, वर्दवान, ढ़ाका, हुगली जैसे नगर ऐश्वर्य के प्रतीक तथा धनसम्पन्न थें। मुगलों की विकसित आर्थिक स्थिति उस काल की स्थापत्य कला, चित्रकला, हस्तशिल्प, इत्यादि में झलकती है। इन सभी क्षेत्रों में मुगलों ने नए आयाम बनाए जो सम्पूर्ण विश्व में उत्तम है।

मीनाकारी को मानव जाति के रचनात्मक आविष्कारों में कहा जा सकता है। चूंकि इस कला में जटिल रासायनिक प्रक्रिया शामिल है इसलिए इसे प्रयोगशाला की कला भी कहा जा सकता है। मीनाकारी की कला का इतिहास लगभग 5000 साल पुराना है। यह कला मिट्टी, चित्रकारी और आग के संगम के नतीजे में सुंदर रचना पेश करती है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि ईरानी मीनाकारी की कलाकृतियों से यूनानी साम्राज्य की मीनाकारी की कलाकृतियों को आपस में मिला कर देखने से यह साबित हो चुका है कि यह कला ईरान में वजूद में आयी और फिर यहाँ से दूसरे देशों में पहुँची। आज कल इस कला को ज्यादातर तांबे पर इस्तेमाल किया जाता है लेकिन इसे सोने, चांदी और पीतल पर भी इस्तेमाल किया जा सकता है। सोना अकेली ऐसी धातु है जो इनैमल पेंट के पिघलने के बाद ऑक्साइड नहीं होता। इस प्रकार मीना पर बारीक डीजाइन बनाना मुमकिन होता है जबकि तांबे और चांदी पर मीनाकारी में यह गुणवत्ता नहीं आ पाती। अमेरीकी ईरानविद् आर्थर पोप ने मीनाकारी के बारे में लिखा है, "मीनाकारी चमकते व सिके हुए रंगों के

साथ आग और मिट्टी के संगम की कला है। इसका इतिहास ईसा पूर्व से मिलता है। धातु पर इस कला के नमूने 6 से 4 शताब्दी ईसापूर्व तक के मौजूद हैं। ईरान में मीनाकारी की कला अन्य क्षेत्रों से पहले मौजूद थी और सफवी शासन काल में फ्रांसीसी पर्यटक जान शार्डेन ने इस कला के एक प्राचीन नमूने का उल्लेख किया है। मीनाकारी की कला से युक्त इस नमूने पर हल्के नीले रंग, बैंगनी और लाल रंग का इस्तेमाल हुआ है।

अंत में मीनाकारी के उत्कृष्ठ कला उत्पाद की पहचान के संबंध में इस बिन्दु का उल्लेख जरूरी है कि अगर मीनाकारी की कलाकृति पर हाथ फेरने पर खुरदुरे पन का एहसास तो इसका मतलब है कि अमुक कलाकृति पर मीनाकारी सही ढंग से नहीं की गयी है। मीनाकारी के चित्रों में बहुत सफाई होनी चाहिए और चित्रों में एक प्रकार का सामन्जस्य होना चाहिए। इसी प्रकार मीनाकारी के बर्तन के पिछले भाग पर चमकदार पॉलिश इस तरह से की गयी हो कि कहीं पर फटी हुयी नजर न आए। इसी प्रकार बर्तन के भीतर रंग या चमकदार पॉलिश कहीं से हटी न हो। इस बिन्दु का उल्लेख भी जरूरी है कि मीनाकारी के जिन बर्तनों को तांबे की बहुत पतली परत से बनाया जाता है उन पर आम तौर पर अच्छी मीनाकारी नहीं होती और वे हल्के होते हैं।

मुगलकालीन भारत में दस्तकारी उद्योग अति महत्वपूर्ण था जिसमें सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र, मलमल, इत्यादि प्रमुख प्रकार थें।[14] मध्यभारत चन्देरी वस्त्रों के लिए, मछलीपट्टम कपड़ों की छपाई, सूरत गोटा किनारी, वाराणसी जरी के बेल बूटों के लिए, लाहौर शॉल, तथा फतेहपुर सीकरी दरियों के लिए प्रसिद्ध केन्द्र थें। मुगलकाल में इन प्रमुख व्यवसायों के अतिरिक्त अनेक हस्तशिल्प भी प्रचलित रहें। जैसे–विविध विलक्षण पेटियाँ, कलमदान, अलंकृत तश्तरियाँ, हाथी दांत के उत्पाद, लकड़ी की वस्तुएँ, मिट्टी की मूर्तियाँ, पीतल की मूर्तियाँ, कागज बनाने की कला, मीनाकारी, इत्यादि प्रमुख थे। इन मुगलकालीन हस्तशिल्पों में मीनाकारी की विशिष्ट पहचान रही जो कि आभूषणों, तलवार की मूँठ, कटार, थाल, गुलदान, कलात्मक बतख, गज़, पक्षी, प्याला, हुक्का, इत्यादि कलाकृतियों पर नज़र आई। मीनाकारी हस्तशिल्प का पूर्णतः चलन मुगलकाल में नजर आया जब यह हस्तकला अपनी उल्लेखनीय पहचान कायम करने में सफल हुई। मीनाकारी की कलात्मकता की जानकारी अग्रप्रस्तुत कतिपय कलाकृतियों से होती हैं।

चित्र : मुगलकालीन पारदर्शी मीनाकृत तश्तरी

आमेर नरेश मानसिंह द्वारा ही मुगल बादशाह अकबर को भी इस हस्तशिल्प से परिचित करवाया गया। तत्पश्चात् अकबर ने मीनाकारों को आमेर से मुगल दरबार में आमंत्रित किया। वहाँ मीनाकारों ने

बादशाह अकबर तथा मुगल राजकुमारों के लिए हाथों और पैरों के कड़े, बाजूबंद आदि बनाने के अतिरिक्त अकबर बादशाह को जड़ाऊ सरपेंच तथा कलगी भी भेंट की थी।[15]

अकबर कालीन इतिहासकार अबुल फज़ल कृत *आईन–ए–अकबरी* में कड़े, बाजूबंद, सरपेंच, मीनाकृत आभूषणों का उल्लेख प्राप्त होता है।[16] कुमारास्वामी के अनुसार अकबर की हस्तशिल्प कार्यशाला में विभिन्न कारीगर होते थे जिनमें मीनाकार भी कार्य करते थे तथा स्वयं अकबर के द्वारा भी इस हस्तशिल्प को प्रोत्साहन दिया गया।[17] बादशाह अकबर के शासनकाल में मीनाकारी हस्तशिल्प को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ क्योंकि मुगल बादशाह आभूषणों के प्रशंसक थे।[18] तत्कालीन मीनाकार आभूषणों के अतिरिक्त विभिन्न अस्त्र शस्त्रों पर भी मीनाकारी करते थे।

चित्र : शाहजहाँ कालीन मीनाकृत बॉक्स

शाहजहाँ के पश्चात् औरंगजेब के शासनकाल में मुगलकालीन कलाएं अवनति को प्राप्त हुई जिनमें स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत कला के साथ हस्तकलाओं का भी पतन हुआ जिनमें मीनाकारी को भी शाही समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। अतः यह हस्तशिल्प मुगलों के संरक्षण से उपेक्षित कुछ प्रांतीय राज्यों एवं क्षेत्रों तक ही सीमित होने लगी। जैसे– बनारस, जयपुर, कच्छ, इत्यादि।

राजस्थान में मीनकारी के प्रमुख केन्द्र

राजस्थान में मीनाकारी के प्रमुख केन्द्र नाथद्वार, जयपुर, भीलवाड़ा, प्रतापगढ़ है। आज यद्यपि आभूषण निर्माता मीनाकारी आभूषणों को प्राथमिकता देते हैं और हर जगह मीनाकारी कार्य चलता रहता है। परन्तु मीनाकारी कला में सबसे दक्ष परम्परागत मीनाकार जयपुर के हैं क्योंकि वहीं दीनदयाल मीनाकार घराना, कुदरतसिंह मीनाकार घराना तो है ही साथ ही वहां पर प्रशिक्षण संस्थान भी है। जयपुर तो सोना–चांदी, पीतल पर मीनाकारी एवं मीनकारी आभूषणों के निर्यात में न केवल राजस्थान बल्कि भारत में भी अग्रणी है। चांदी पर मीनाकारी के लिए नाथद्वार, राजसमन्द, पीतल पर मीनाकारी के लिए जयपुर तो प्रसिद्ध है साथ ही कांच पर मीनाकारी के लिए प्रतापगढ़, दीवारों पर मीनाकारी के लिए बीकानेर क्षेत्र आज भी प्रसिद्ध है। थेवा कला (कांच पर स्वर्ण मीनाकारी) के लिए प्रतापगढ़ प्रसिद्ध है। संगमरमर पर मीनाकारी का कार्य जयपुर में होता है। कोफ्तागिरी का कार्य जयपुर तथा अलवर में अत्यधिक होता है। उदयपुर में व्हाइट मेटल के पशु–पक्षी व फर्नीचर बनाया जाता है। आज भी जयपुर आभूषण और शिल्प में पारंपरिक मीनाकारी के सबसे प्रमुख केंद्रों में से एक है।

वर्तमान समय में प्रत्येक वस्तु में आधुनिकता नजर आती है। ऐसे में मीनाकारी भी इसके प्रभाव से अछूती ना रह सकी। आधुनिकता का मीनाकारी पर प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों नजर आता है। आधुनिक मीनाकारी के सकारात्मक प्रभाव के अन्तर्गत यह समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँच कायम करने में सफल हुई क्योंकि आधुनिक मीनाकारी पीतल, ताम्र धातु पर अधिक होती है जो सभी खरीद सकतें हैं। आधुनिक मीनाकारी कलाप्रेमियों में अत्यधिक लोकप्रियता बना रही है क्योंकि इनकी डिजाइन कलाप्रशंसकों में प्रशंसा प्राप्त कर रहें हैं। इस प्रकार की मीनाकारी में स्वचालित भट्टी के उपयोग से कलाकृति का निर्माण भी कम समय में हो जाता है। जहाँ आधुनिक मीनाकारी के सकारात्मक प्रभाव उल्लेखनीय हैं, वहीं नकारात्मक प्रभाव भी स्पष्ट नजर आतें हैं जैसे इससें परम्परागत मीनाकारी की साख में गिरावट आई, पारम्परिक मीनाकारी के मीनाकारों की संख्या में कमी आई, परम्परागत आकृति अलंकरणों, उदाहरणार्थ– नायक नायिका, शिकार दृश्य, आदिका अभाव रहा है। उपर्युक्त विवरण से आधुनिक मीनाकारी के विकास को प्रभावित करने वाले विविध सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव भी स्पष्ट नजर आतें हैं।

संदर्भ

1 नीरज, डॉ. जयसिंह, शर्मा, भगवतीलाल 'राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पृ. 213
2 जैन, डॉ. हुकुमचन्द, माली, नारायण, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एन साइक्लोपीडिया, पृ. 205
3 हेनरी हार्डिंग क्यूनघमे, द जर्नल ऑफ द सोसाइटी ऑफ आर्ट्स, वॉल्यूम 48, (दिसंबर 1899), पृ. 137–138
4 हेनरी हार्डिंग क्यूनघमे, द जर्नल ऑफ द सोसाइटी ऑफ आर्ट्स, वॉल्यूम 48, (दिसंबर 1899), पृ. 137–138
5 मार्विन चौंसी, ऑस्ट्रियाई गॉथिक एनामेल्स एंड मेटल वर्क, द जर्नल ऑफ द वाल्टर्स आर्ट गैलरी, वॉल्यूम–1, 1938, पृ. 79
6 लिमोज एनामेल्स बुलेटिन, एस.एल.एस., सेंट लुइस, वाल्यूम–10, नं. 3, (जुलाई, 1925), सिटी आर्ट म्यूजियम, पृ. 38–45
7 एच.पी. मिचेल, इग्लिश एनामेल्स ऑफ द ट्वेल्थ सेंचुरी, द बर्लिंगटन मैगजीन फॉर कनॉन्सेर्स, वॉल्यूम 47, नंबर 271, (1925), पृ. 163–169
8 नीरज, डॉ. जयसिंह, शर्मा, भगवतीलाल 'राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पृ. 213
9 राठौड़, डॉ. अमरसिंह, 'राजस्थान सुजस' सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग राजस्थान, पृ. 896
10 आनंद के. कुमारस्वामी, एन इंडियन एनामेल, बुलेटिन ऑफ द म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स, वॉल्यूम 38, (1940), पृ. 24–28
11 पॉल, एम.के., क्राफ्ट एण्ड क्राफ्टमैन ऑफ इंडिया, कनक पब्लिकेशन, दिल्ली, 1978, पृ. 95
12 सतीशचन्द्र, मध्यकालीन भारत, (नई दिल्ली : ओरियंट लॉग्मैन, 2007, 309।
13 मार्ग, द ज्वेल्स ऑफ इंडिया, (संपादित) मार्ग प्रकाशन, बाम्बे, 1995, पृ. 112
14 इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत का आर्थिक इतिहास, (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2001), 52–54।
15 माथुर, कमलेश, हस्तशिल्प कला के विविध आयाम, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1997, 118–119।
16 एच. ब्लोचमैन, अबुल फजल द्वारा आईने–अकबरी, कलकत्ता, 1877, पृ. 186–187
17 आनंद के. कुमारस्वामी, एन इंडियन एनामेल, बुलेटिन ऑफ द म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स, वॉल्यूम 38, (1940), पृ. 24–28
18 भारत का गजेटियर, वॉल्यूम प्प, इतिहास और संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार, 2006, नई दिल्ल, पृ. 603–604